International Journal of Information Movement Vol.2 Issue X February 2018)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 1-4

नारी अस्मिता का संघर्ष : पहचान की एक तलाश

सुबोध कुमार शांडिल्य
शोधार्थी(हिंदी विभाग)
म० वि०. बोधगया
ईमेल: subodhshandilya012@gmail.com

'अस्मिता' शब्द आज के युग-संदर्भ में बहुप्रचलित व बहुप्रचारित शब्द हैं। वैचारिक और अवधारणात्मक परिवर्तनों ने इस शब्द को गति प्रदान की है। चिंतनपरक विचारधारा से आधुनिक समाज में कई प्रकार के अस्मिताओं का आविर्भाव हुआ है, यथा- राष्ट्रीय अस्मिता, नारी अस्मिता, सांस्कृतिक अस्मिता, दलित अस्मिता, आदिवासी अस्मिता आदि। लेकिन अबतक इस अस्मिता का कोई परिनिष्ठित परिभाषा नहीं गढ़ी जा चुकी है। विभिन्न संदर्भो में इसका संदर्भित अर्थ हीं ग्रहण किये जाते हैं। भार्गव, आदर्श हिन्दी शब्दकोश के अनुसार इसका शाब्दिक अर्थ- 'आत्मश्लाघा, अहंकार एवं मोह होता है'। आत्मश्लाघा का अर्थ होता है- स्वयं की प्रशंसा करना। अहंकार हृदयगत अहम भावना है, जबकि मोह ज्ञानरहित प्रीति है। यदि इन कोशगत शब्दों के आधार पर 'अस्मिता' शब्द की व्याख्या की जाय तो अस्मिता विमर्श का मायने ही बदल जायेंगे। लेकिन इतना कहा जा सकता है कि अस्मिता शब्द आज के दौर में कुछ विशेष सामाजिक वर्गों अथवा समूहों की ओर संकेत करता है, जो आधुनिक सामाजिक संरचना में अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील है, संघर्षरत है।

नारी अस्मिता का संघर्ष उसके अस्तित्व को सामाजिक स्वीकृति प्रदान कर एक विशिष्ट पहचान से समाज को अवगत कराना है। अबतक नारी की पहचान किसी की माँ, किसी की पत्नी तथा किसी की पुत्री के रूप में रहा है। लेकिन शिक्षा प्राप्ति एवं जागृति के कारण वह अपनी अस्तित्व की तलाश में प्रयत्नशील है। इसका सकारात्मक प्रभाव भी पड़ा है। अब पिता के साथ माता का नाम लिखना अनिवार्य कर दिया गया है। सम्पति में भी अधिकार प्राप्त है। घरेलू हिंसा एवं दहेज़ उत्पीड़न में भी क़ानूनी संरक्षण प्राप्त हैं। नौकरी-पेशा में भी बिना लिंग-भेद के समान अवसर उपलब्ध हैं. यहाँ तक की विशेष प्रावधान कर आरक्षण का लाभ भी मुहैया कराया गया है। यही कारण है कि आज विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएं शीर्ष पद पर आसीन हैं। उनकी अपनी पहचान है। फिर भी आधुनिक नारी अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही है। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि नारी अस्मिता का संघर्ष जो नारी-मुक्ति का संघर्ष है किसलिए, किसके लिए और किससे मुक्ति का संघर्ष है?

पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृति में नारी मुक्ति का आन्दोलन 18वीं सदी में मानवतावाद और औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप प्रारम्भ हुआ। यह सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका में शुरू हुआ। 1792 ई० में सर्वप्रथम स्त्रियों की अधिकारों की बहाली की गयी। फ्रांसीसी क्रान्ति में भी स्त्री अधिकारों की माँग की गयी थी। परन्तु वास्तव में नारीवादी आन्दोलन की शुरुआत 1848 ई० में न्यूयार्क से की गयी, जिसमें नारी स्वतंत्रता पर एक घोषणा-पत्र जारी किया गया। "इस घोषणा-पत्र में स्त्रियों के लिए पूर्ण क़ानूनी समानता, पूर्ण शैक्षिक और व्यावसायिक अवसर, समान मुआवजा और मजदूरी कमाने का अधिकार तथा वोट देने के अधिकार की माँग की गई थी।"[i] अमेरिका में 1920 में नारी मताधिकार की जीत हासिल की गई। 1946 में नारी की दशा पर संयुक्तराष्ट्र संघ ने एक आयोग गठित किया. 1960 के दशक में अमेरिका में नारी मुक्ति आन्दोलन एक नये रूप में प्रकट हुआ। एशिया में नारीवादी संघर्ष की शुरुआत लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति चेतना जागृत होने के फलस्वरूप हुई। 19वीं और 20वीं सदी में विदेशी शासन और सामंती शासकों की निरंकुशता के विरुद्ध उठ खड़े हुए आंदोलनों के दौरान नारीवादी धारणा को भी बल मिला। इसके फलस्वरूप विधवा पुनर्विवाह, बहुविवाह, सती व पर्दा प्रथा पर रोक तथा स्त्रियों के लिए शिक्षा व क़ानूनी अधिकार या संवैधानिक स्वतंत्रता आदि की माँग उठी. इन मांगो के फलस्वरूप स्त्रियों ने बहुत से क्षेत्रों में तरक्की की, लेकिन यह ना काफी था।

नारी आन्दोलन से संबद्ध लोगों खासकर महिलाओं के द्वारा यह आरोप लगाया जाता रहा है कि पितृसतात्मक व्यवस्था को कायम रखने के लिए ही पुरुषों ने महिलाओं के लिए अर्धांगिनी, देवी जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं ताकि उसे आसानी से फुसलाया या भरमाया जा सके। उनका यह भी आरोप है कि पुरुषों ने स्त्रियों को एक भोग्य वस्तु की तरह उपयोग किया है तथा वास्तविक अधिकारों से वंचित रखने का सर्वदा षड्यंत्र किया है। इतना ही नहीं उनका यह भी आरोप है कि विवाह, संतान और सामाजिक लक्ष्मण रेखाओं में जकड़कर उसके शरीर को गुलाम बनाया गया तथा सभी दृष्टियों से पुरुष के मुकावले कमजोर बताकर उनका अपमान तथा शोषण किया जाता रहा है आदि।

उक्त आरोप को यथार्थ के धरातल पर रखकर वास्तविकता का युक्तियुक्त पड़ताल करना आवश्यक प्रतीत होता है। इसमें दो राय नहीं की प्राचीन भारतीय समाज में जहाँ स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था, वही मध्यकाल में उसे सिर्फ भोग्या समझा जाने लगा। महिलाओं को चाहरदीवारी में कैद कर उसकी भूमिकाओं को सीमित कर दिया गया। इसका प्रमुख कारण बर्बर आक्रमणकारियों के कुत्सित नज़रों से बचाने का भाव निहित था। लेकिन कालान्तर में यह परम्परा व रूढि का रूप ले लिया तथा स्त्रियों की भूमिका चूल्हे-चौके तथा परिवार की सेवा तक सीमित कर दिया गया। जौहर या सती होने का चलन भी कुछ ऐसे ही कारणों से प्रारम्भ हुआ जो बाद में प्रथा का रूप धारण कर लिया तथा कितने ही स्त्रियों को मौत के आगोश में ढकेल दिया गया। लेकिन अंग्रेजी राज में पुनर्जागरण का आगाज हुआ, शिक्षा का प्रसार हुआ, फलतः इन सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाजें उठने लगी। सती प्रथा का अन्त कर दिया गया, विवाह के लिए न्यूनतम उम्र निर्धारित कर दिये गये, विशेष संरक्षनात्मक प्रावधान किये गये। लेकिन फिर भी यह नारी उत्थान के लिए यथेष्ट नहीं थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी के उत्थान के लिए कई कारगर कदम उठाये गये, जिनमें कुछ संरक्षात्मक थे तो कुछ संरचनात्मक। इन सभी का परिणाम हुआ कि महिलाएं विभिन्न क्षेत्रों में आगे आई तथा पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर काम करने लगी। लेकिन फिर भी नारी अस्मिता के पैरोकारों का आरोप है कि नारियों को पुरुषों द्वारा सताया जाता रहा है, शोषण किया जाता रहा है. दलित स्त्रियों को दोहरे शोषण का शिकार होना पड़ रहा है. लेकिन इन अस्मितावादियों का ध्यान मुस्लिम महिलाओं की ओर कम ही जाता है, जबकि सबसे दारुण स्थिति इनकी ही है।

नारी विमर्श के केन्द्र में भारतीय ग्रंथो में वर्णित नारी के लिए प्रयुक्त श्रद्धा, देवी, गृहस्वामिनी तथा अर्धांगिनी जैसे शब्द भी हैं। कुछ लेखिकाओं का कहना है कि इन शब्दों के द्वारा ही पुरुष नारी पर अपना आधिपत्य स्थापित कर रखा है। लेकिन वे भूल जाते हैं कि आदरसूचक एवं सम्मानजनक शब्द किसी के भूमिका को सीमित नहीं करता। प्रसाद ने नारी को मान देने के लिए ही उसे श्रद्धा कहा है। श्रद्धा का दूसरा नाम प्रेम भी है जो शुद्ध-सात्विक अन्तःमन की प्रतीति है। ऐसे में यदि नारी को श्रद्धा जैसे शब्दों से अभिहित किया जाता है तो किन्तु-परन्तु का कोई सवाल पैदा नहीं होना चाहिए। प्रसाद ने स्त्री-पुरुष दोनों को समान अहमियत दिया है. उनका स्पस्ट मत है कि सृष्टि की गाड़ी समरसता से चलती है, न कि असमानता, विषमता एवं आदेशो से। यथा-

"तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सता है नारी की,
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की।"[ii]

स्त्री और पुरुष इस सृष्टि के दो अनुपम जीव हैं। दोनों की महता समान है. जीवन के संतुलन के लिए दोनों की भूमिका समान है।एक के बिना दूसरे का जीवन निरापद नहीं है। कामायनीकार ने कहा है-

"आँसू से भींगे आंचल पर मन का सबकुछ रखना होगा,
तुमको अपनी स्मित-रेखा से यह संधि-पत्र लिखना होगा."

लज्जा सर्ग

लज्जा सर्ग की उक्त पंक्तियों का व्याख्या करते हुए कुमार मंगलम ने लिखा है- "नारी और पुरुष जीवन के एक ऐसे संधि-पत्र की तरह हैं जो सृष्टि के प्रवाह में अपने कर्म से, श्रम से एवं आपस के साहचर्य से जिंदगी की

कहानी लिखते हैं। जीवन संधि में संभव है, विच्छेद में नहीं। समास से यह सृष्टि की गाड़ी चलती है, विग्रह से नहीं।"[iii]

नारी अस्मिता के पुरोधाओं को विवाह, संतान एवं परिवार जैसे परम्परागत व्यवस्था भी शोषण के उपकरण जान पड़ते हैं। लेकिन वे इनकी महता को भूल जाते हैं। विवाह की महता पर प्रकाश डालते हुए श्री भगवान् दासजी कहते हैं- "विवाह स्त्री और पुरुष- दो भिन्न लिंगो के प्राणियों के सम्बन्ध को अधिक स्पस्ट, व्यवस्थित और सुसंयमित बनाने का एक माध्यम है। यही माध्यम व्यापकता के सिद्धान्त का अवलंबन कर समाज का हितैषी बना। विवाह वासनातृप्ति का साधन नहीं है, जीवन की एक जटिल गंभीरता की एक देन है। यदि जीवन खिलवाड़ होता तो कदाचित् विवाह की आवश्यकता ही न रह जाती---------विवाह जीवन के सरल और सुगम संचालन का पथ-प्रदर्शक है।"[iv] इसके बाद विवाह, संतान एवं परिवार के विषय में कहने के लिए कुछ यथेष्ट ही नहीं रह जाता है क्योंकि ये सभी जीवन की एक कड़ी की लरी है। जहाँ तक शोषण का सवाल है तो यह एक निरंतर प्रक्रिया है। ऐसा कहने का आशय उसको जायज ठहराना नहीं बल्कि समाज को आइना दिखाना है। यह स्त्री-पुरुष के बीच शोषण का सिर्फ सवाल नहीं है। प्रकृति में भी शोषण मौजूद है। चाहे जन्तु, पक्षी एवं वनस्पति आदि क्यों न हो वे भी एक-दूसरे का शोषण कर जीते हैं। सरकार भी अपने कर्मियों का शोषण करती है। एक भाई दूसरे भाई का शोषण करता है। कार्यालय में वरिष्ठ अपने कनिष्ठ का शोषण करता है। यह हरेक स्तर पर मौजूद है। यह शक्तिशाली और शक्तिहीन, शिक्षित और अशिक्षित, संपन्न और विपन्न, सक्षम और अक्षम तथा अधिकार संपन्न और अधिकार विहीन का सवाल है। स्त्रियों को भी इस शोषण के भंवर-जाल से बचने के लिए योग्यता-पात्रता को धारण करना होगा, शिक्षित बनना होगा, सक्षम बनना होगा तथा स्वत्व को जाग्रत करना होगा। यदि नारी ऐसा करने में सफल हो जाती है तो हर स्तर पर शोषण से मुक्ति मिल जाएगी।

महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार, हिंसा, उत्पीड़न आदि एक आम समस्या है। इस समस्या की जड़ पुरुषों को माना जाता है। लेकिन यह दाबे से कहा जा सकता है कि यौन-उत्पीड़न के लिए तो शत प्रतिशत पुरुष जिम्मेवार है, लेकिन अन्यों में महिलाएं भी समान रूप से सहभागी हैं। दहेज़ व हिंसा एवं घरेलू उत्पीड़न में सास, ननद, गोतनी एवं घर के अन्य महिलाओं की भूमिका पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा देखी गयी है। कभी-कभी तो ऐसी घटनाओं का सूत्रधार महिलाएं ही होती है। ऐसे में एक महिला ही दूसरी महिला के अस्मिता को क्षतिग्रस्त कर देती है। इस संबंध में निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

"सास-ननद कर रही कही तो पुत्र-बधू पर अत्याचार,
कही बधू ही सास-ननद को देती खड़ी कड़ी फटकार।"[v]

अतः इसके लिए आवश्यक है कि एक औरत दूसरे औरत का सम्मान करे। इस नारी मनोविकार का शमन हरहाल में करना होगा, अन्यथा नारी अस्मिता का संघर्ष अधूरी रह जाएगी तथा नारी की स्वतंत्र पहचान बनाने की लालसा एक ख्वाव बनकर रह जायेगा। कहने का तात्पर्य यह कतई नहीं है कि इनसब के लिए पुरुष दोषी नहीं है, सिर्फ यह कहना है कि यदि महिला के विरुद्ध महिला खड़ी नहीं हो तो पुरुष की क्या विशात कि वह उसका बाल-बाका भी कर सके।

जहाँ तक गृह का संचालन एवं सम्पतिनामा का प्रश्न है तो आपसी समझदारी से हल किया जा सकता है। ऐसा प्रश्न प्रायः वही खड़ा होता है जहाँ स्त्री-पुरुष को एक दूसरे पर विश्वास एवं भरोसा का अभाव होता है। यह अहम का टकराव भी हो सकता है जो किसी भी रूप में परिवार नामक संस्था के लिए स्वस्थकर नहीं होता। जिसप्रकार किसी संस्था एवं संगठन चलाने के लिए एक को मुखिया चुनना पड़ता है और उसपर विश्वास कर सहयोग करना पड़ता है, उसीप्रकार घर चलाने के लिए एक को मुखिया मानना होगा, वह पुरुष अथवा स्त्री में से कोई हो सकता है। यह विवाद का विषय नहीं है बल्कि विश्वास का विषय है।

वर्तमान समय में महिलाओं के साथ यौन-उत्पीड़न की घटनाएँ बढ़ी हैं। कितने दामिनी को हवश का शिकार बनाकर हत्या कर दी जा रही है। नारी जाति के साथ इस प्रकार के हरकत को कुछ पुरुषो द्वारा विभिन्न बहाना बनाकर बचाव भी किया जाता रहा है जो सर्वथा अनुचित ही नहीं एक प्रकार का अक्षम्य अपराध है। ऐसे सोच के पुरुष के कारण ही आज पुरुष जाति शर्मिंदा है। जबकि यह सत्य है कि इस

मानसिकता के पुरुष काम ही है, फिर भी पुरुष के बदनामी का प्रमुख कारण है। अतः ऐसे विकृत सोच व कर्म वाले पुरुषों को मनोवैज्ञानिक एवं मानसिक ईलाज की जरुरत है। आज भी टोले-महल्ले में स्त्री-पुरुष एक साथ सौहार्दपूर्ण माहौल में रहते हैं तथा पुरुषों द्वारा स्त्रियों को सम्मान दिया जाता है। अतः यह कहना कि स्त्रियों के साथ कुकृत्य के लिए सम्पूर्ण पुरुष जाति जिम्मेवार है, कतई उचीत नहीं है।

जब नारी अस्मिता की बात हो रही हो तो इसके सौंदर्यशास्त्र पर विचार करना भी लाजमी हो जाता है, क्योंकि नारी को सौंदर्य का साक्षात् प्रतिमूर्ति माना जाता रहा है। लेकिन वर्तमान युग-संदर्भ में इस सौंदर्य का अवधारणात्मक स्वरुप में परिवर्तन हुआ है। नारी अस्मिता का यह सौंदर्यशास्त्र नारी के परम्परागत रूप-लावन्य, नख-शिख वर्णन एवं उसके विभिन्न अदाओं के मनमोहक छटांओं से भिन्न, अपनी पहचान की तलाश करती संघर्षरत नारी की अभ्यांतारिक गुणों का परिचायक है। नारी का यह सौंदर्य स्थूल नहीं, बल्कि सूक्ष्म है। यह सौंदर्य किसी के क्रीड़ा-कंदुक बनकर ऐहिक सुख प्रदान करने के लिए उपकरण मात्र नहीं है, अपितु पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर समाज व राष्ट्र निर्माण में संलग्न, अपनी महती भूमिकाओं को अदा करती संघर्षशील नारी की है, जिसके हृदय में प्यार तो है, लेकिन किसी के मोहपाश का आकांक्षी नहीं है, बल्कि समाज व राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए न्योछावर है, पूर्णरूपेण समर्पित है। नारी अस्मिता का यह सौंदर्य नेत्रों में न तो नफ़रत की चिंगारी समाहित किये हुए है और न ही अश्रु की अविरल धार। यह सौंदर्य नारी के सजग नेत्रों से स्नेह की धार के रूप में प्रवाहित होते हुए परिवार, समाज एवं राष्ट्र को उपकृत करने में अभिरत है। नारी अस्मिता के सौंदर्य का उपादेयता भी इसी में है, सौंदर्यशास्त्र की सौंदर्यानुभूति भी इसी में है।

अस्तु कहा जा सकता है कि नारी अस्मिता की रक्षा के लिए तथा नारी की पहचान स्थापित करने के लिए नारी-मुक्ति का संघर्ष जायज है। यह संघर्ष किसी जाति के विरुद्ध नहीं है, बल्कि अज्ञानता, अशिक्षा एवं आर्थिक अभाव आदि के विरुद्ध है। पितृसतात्मक सत्ता के विरुद्ध नारी संघर्ष को जोड़कर देखना नारी के मूल समस्या से ध्यान भटकाने की एक कोशिश है। नारी अस्मिता के संघर्ष को पुरुषवादी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष कहना मूल समस्या को सरलीकृत कर देना है जबकि समस्या जटिल है। स्त्री-पुरुष की पहचान एक दूसरे से जुड़ा है, स्वतंत्र नहीं। नारी की स्वतंत्र पहचान का अर्थ नारी-पुरुष विभेद नहीं हो सकता. इसका अर्थ होता है- आत्मनिर्भर नारी, सशक्त नारी, समन्वयकारी नारी, मार्गदर्शक नारी, सकारात्मक ऊर्जा से लवरेज नारी तथा हर प्रकार के शोषण-दमन-उत्पीड़न के विरुद्ध शंखनाद करती नारी आदि. नारी अस्मिता का संघर्ष नारी की इसी भूमिका में अपनी पहचान बना सकती है, अन्यथा पहचान की तलाश में भटकते रहने की गुंजाइश हमेशा बनी रहेगी। नारी अस्मिता का सौंदर्य भी नारी के इन्हीं रूपों में फ़वेगी तथा प्रस्फूटित होगी।

संदर्भ- सूची

[i] हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ अमरनाथ, पृ०- 385.
[ii] कामायनी के इड़ासर्ग से उद्धृत.
[iii] आधुनिक काव्य-यात्रा, लेखक- कुमार मंगलम, पृ०- 38.
[iv] नारी की समस्याएँ (कल्याण-नारी अंक) पृ० 409-10.
[v] कल्याण-नारी अंक, पृ०-230.